[2021] 3 उम. नि. प. 423

के. एन. नागराजप्पा और अन्य

बनाम

एच. नरसिम्हा रेड्डी

[2009 की सिविल अपील सं. 5033-5034]

9 सितंबर, 2021

न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव और न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और धारा 103 – द्वितीय अपील – तथ्यों का अवधारण – उच्च न्यायालय की शक्ति – हक की घोषणा और कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए वाद फाइल किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा वाद डिक्री किया जाना – प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री को अपास्त किया जाना – द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण दस्तावेज की परीक्षा किया जाना और अपील मंजूर किया जाना – जहां यह पाया जाता है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण साक्ष्य और अभिलेख का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन न करके विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को गलत रूप से उलट दिया गया हो और महत्वपूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य के महत्व की अनदेखी कर दी गई हो, वहां द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा धारा 103 के अधीन ऐसे तथ्यात्मक दस्तावेजों की परीक्षा करके निष्कर्षों को ठीक किया जा सकता है ।

इस मामले के प्रयोजनों के लिए सुसंगत तथ्य यह हैं कि भूमि के सुभिन्न खंडों की बाबत कतिपय रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किए गए थे । उसी दिन, सामान्य विक्रय विलेख द्वारा एक संव्यवहार भूमि के तीन खंडों (वादांतर्गत संपत्ति) के विक्रय के संबंध में निष्पादित किया गया था । क्रेता (वादी/प्रत्यर्थी) ने इन संपत्तियों के संबंध में हक की घोषणा और कब्जे के प्रत्युद्धरण तथा अंत:कालीन लाभ के लिए एक वाद फाइल किया । यह दावा इस तथ्य पर आधारित था कि वादी/प्रत्यर्थियों ने ये संपत्तियां अपीलार्थियों (वाद में प्रतिवादियों) से

रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय की थीं । यह अभिवाक् किया गया कि यद्यपि अपीलार्थियों ने वादी/प्रत्यर्थियों को कब्जा दे दिया था, किंतु बाद में दुर्भावना पैदा हो जाने के उपरांत उन्होंने अधिभोग अधिकार की ईप्सा करते हुए भूमि अधिकरण में समावेदन किया और उन्हें अर्थात् वादी/प्रत्यर्थियों को वादांतर्गत संपत्ति से बेकब्जा करने की कार्यवाही की । भूमि अधिकरण ने आरंभ में अपीलार्थियों के पक्ष में न्यादेश दिया, तथापि, उन निष्कर्षों को उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई रिट याचिका में अपास्त कर दिया गया । इस प्रश्न को नए सिरे से विचार करने के लिए भूमि अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया गया । इस दौर में भूमि अधिकरण ने पक्षकारों को विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए सिविल न्यायालय में समावेदन करने का निदेश दिया । इसलिए वादी/प्रत्यर्थियों ने घोषणा और कब्जे के लिए प्रथम वाद फाइल किया । अपीलार्थियों ने प्रथम वाद में प्रतिरक्षा की और दावों से इनकार किया । अपीलार्थियों ने एक अन्य वाद (जिसे "द्वितीय वाद" कहा गया है) फाइल किया । द्वितीय वाद में यह अभिकथन किया गया कि प्रत्यर्थी (द्वितीय वाद में प्रतिवादी) के पक्ष में किया गया विक्रय विलेख एक नाममात्र का विक्रय विलेख था और प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए उधार के लिए एक प्रतिभूति के रूप में निष्पादित किया गया था । अपीलार्थियों ने एक दस्तावेज का अवलंब लिया जिसके बारे में उन्होंने यह दावा किया कि वह विक्रय करार था, जिसके अधीन प्रत्यर्थी अभिकथित रूप से अपीलार्थियों को वाद संपत्तियों को निष्पादित या प्रतिहस्तांतरित करने के लिए सहमत हुआ था । इस करार के निबंधनों के अनुसार, अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थी को तीन वर्ष के भीतर 9,000/- रुपए का संदाय करना था । यह अभिकथन करते हुए कि प्रत्यर्थी ने 9,000/- रुपए की पूरी रकम 15 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ प्राप्त करने के बावजूद विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया, अपीलार्थियों ने हक की घोषणा और स्थायी व्यादेश तथा अनुकल्पत: तारीख 28 मई, 1973 के विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए द्वितीय वाद फाइल किया । अपीलार्थियों ने यह भी आग्रह और दावा किया कि वे वादांतर्गत संपत्तियों पर काबिज हैं । विचारण न्यायालय ने हक, कब्जे और विनिर्दिष्ट पालन के लिए विवाद्यक विरचित किए और सामान्य साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए अग्रसर

हुआ । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी विक्रय विलेख (एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज) के फलस्वरूप वादांतर्गत संपत्तियों का पूर्ण स्वामी है और यह भी निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी, जिन्होंने द्वितीय वाद फाइल किया था, वाद संपत्तियों पर अवैध रूप से काबिज हैं । द्वितीय वाद में के विवादों के संबंध में विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी उस करार के निष्पादन को सिद्ध करने में असफल रहे हैं जिसके लिए उन्होंने विनिर्दिष्ट पालन के लिए ईप्सा की थी । परिणामत:, प्रत्यर्थी के वाद अर्थात् घोषणा, हक और कब्जे के लिए प्रथम वाद को उसके पक्ष में डिक्री किया गया और अपीलार्थियों के वाद को खारिज कर दिया गया । द्वितीय वाद की खारिजी तथा प्रथम वाद में प्रत्यर्थी के पक्ष में डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थियों द्वारा अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष अपीलें फाइल की गईं । प्रथम अपील न्यायालय ने अपीलार्थियों की दलीलों को विश्वसनीय माना और उनके अभिवाक् को मंजूर किया । परिणामत:, यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी के पक्ष में विक्रय विलेख एक नाममात्र का विक्रय विलेख था और यह कार्यवाही किए जाने के लिए नहीं था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थियों ने विक्रय करार को साबित किया था और विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री के हकदार थे । प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय में दो द्वितीय अपीलें फाइल कीं । उच्च न्यायालय ने यह पाया कि अपीलार्थियों द्वारा अवलंब लिया गया मुख्य आधार विक्रय करार अर्थात् प्रदर्श डी-3 की असलियत और सत्यता की बाबत था । उच्च न्यायालय ने अन्य तथ्यों और इस दस्तावेज, प्रदर्श डी-3 पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय का निर्णय और डिक्री, उसके समक्ष निष्कर्षों पर पूर्ण रूप से किए गए विचार पर आधारित होने के कारण, उचित और न्यायोचित है । अपीलार्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह, उच्च न्यायालय को धारा 100 के अधीन जो अधिकारिता प्राप्त है, वह उसके द्वारा विधि के सारवान् प्रश्न की विरचना पर आधारित है । विधि की दृष्टि से, यह स्वत:सिद्ध है कि

प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष अंतिम होते हैं । तथापि, यह नियम कि विधि के सारवान् प्रश्न के बिना उच्च न्यायालय निचले न्यायालय के निष्कर्षों या तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, यह दो महत्वपूर्ण सावधानियों के अध्यधीन है । पहली यह है कि यदि तथ्य के निष्कर्ष सुस्पष्टतया अनुचित हैं या न्यायालय की अंतश्चेतना को आघात पहुंचता है ; दूसरे शब्दों में, यह तर्कपूर्ण दिखाई देता है कि अभिलेख पर के तथ्यों पर विचार करते हुए हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा । दूसरी यह है कि जहां तथ्य के निष्कर्षों की परीक्षा किया जाना अपेक्षित है और उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 में उल्लिखित सीमित परिस्थितियों में उलटा जा सकता है । प्रस्तुत मामले में, इस न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने ठोस और विश्वसनीय कारण अभिलिखित किए हैं कि क्यों प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक है । ये कारण पूर्ण रूप से पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर आधारित थे । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन जैसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य का मूल्यांकन तात्विक तथ्यों की अनदेखी करके किया गया था और प्रदर्श डी-3 के निष्पादन की बात से इनकार किया गया था । इन परिस्थितियों में, यह सिद्ध करने का भार अपीलार्थियों पर था कि रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख एक नाममात्र का दस्तावेज था । विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में पांच तर्कपूर्ण कारण दिए गए हैं कि क्यों अपीलार्थियों के अभिवाकों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से अवेक्षा की गई है । विशिष्टियां न होने के अलावा 9,000/- रुपए के प्रतिसंदाय की बाबत अभिसाक्ष्य भी उपबंधों के प्रतिकूल था क्योंकि 15 प्रतिशत की दर से ब्याज के संदाय की बाबत कोई प्रकथन नहीं था । इसके अतिरिक्त, विक्रय विलेख के पश्चात् अधिभोग अधिकारों के लिए किया गया अपीलार्थियों का आवेदन और जो अभिकथित विक्रय करार निष्पादित किया गया था, उसमें यह दावा किया गया था कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के अधीन किराएदार थे । परिणामतः, भूमि अधिकरण के आदेश को अपास्त कर दिया गया था ; मामला प्रतिप्रेषित करने पर भूमि अधिकरण की यह राय थी कि उसे इस विवाद्यक का विनिश्चय करने

की अधिकारिता नहीं है और ऐसा करना विचारण न्यायालय पर छोड़ दिया गया था । यह प्रतीत होता है कि इन महत्वपूर्ण पहलुओं का मूल्यांकन नहीं किया गया था और उनके महत्व को अनदेखा कर दिया गया था । परिणामत:, प्रथम अपील न्यायालय ने महत्वपूर्ण साक्ष्य की अनदेखी करके और अभिलेख का इसके उचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन न करके तथा विचारण न्यायालय की डिक्री उलट कर गलती की थी । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए दस्तावेजों की परीक्षा की थी और निष्कर्षों को इस प्रकार ठीक किया था मानो ये निष्कर्ष धारा 103 के अधीन थे । यदि अपीलार्थियों के तर्क अभिभावी किए जाते हैं, तो तथ्यों के पूर्णत: गलत मूल्यांकन पर आधारित और तात्विक साक्ष्य की अनदेखी करके निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्ष आवश्यक रूप से बने रहेंगे और पक्षकारों पर आबद्ध होंगे जिससे अन्याय होगा । स्पष्ट रूप से इन्हीं कारणों से उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 के अधीन तथ्यात्मक पुनर्विलोकन शक्ति का सीमित प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं । तथापि, ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है । आक्षेपित निर्णय में अभिव्यक्त रूप से इस उपबंध को निर्दिष्ट नहीं किया गया है । मामले की इन परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने इस उपबंध को ध्यान में रखते हुए शक्ति का प्रयोग किया था । इसके अतिरिक्त, हमारी यह भी राय है कि संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित निर्णय में विशेष इजाजत अधिकारिता (जो इस न्यायालय को अंतिम सुनवाई के प्रक्रम पर भी उपलब्ध है) का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 14 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 319 :	
	नारायण सीतारामजी बाडवाइक (मृत)	
	विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत बनाम	
	बिसाराम और अन्य ;	17

[2010] (2010) 13 एस. सी. सी. 214 :
नगरपालिका समिति, होशियारपुर बनाम
पंजाब राज्य बिजली बोर्ड । 16

अपीली (सिविल अधिकारिता) : 2009 की सिविल अपील सं. 5033-5034.

2002 की द्वितीय अपील सं. 368 और 736 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 31 जुलाई, 2008 के सामान्य निर्णय के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एस. एन. भट

प्रत्यर्थी की ओर से श्रीमती ननिता शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट ने दिया ।

न्या. भट – विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई इन अपीलों में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील न्यायालय की डिग्री को उलटते हुए इन दो द्वितीय अपीलों में दिए गए सामान्य निर्णय को चुनौती दी गई है ।

2. इस मामले के प्रयोजनों के लिए सुसंगत तथ्य यह हैं कि भूमि के सुभिन्न खंडों की बाबत तारीख 28 मई, 1973 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किए गए थे । उसी दिन, सामान्य विक्रय विलेख द्वारा एक संव्यवहार तीन खंडों, जो सर्वेक्षण सं. 36/1 (28 गुंटा) ; सर्वेक्षण सं. 37 (एक एकड़ 30 गुंटा) और सर्वेक्षण सं. 28/2 (13 गुंटा) हैं – जिन्हें सामूहिक रूप से "वादांतर्गत भूमि" कहा गया है, के विक्रय के संबंध में था जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया था । यह दस्तावेज विवादित नहीं है । वादी/प्रत्यर्थी और क्रेता ने 1985 के मूल वाद सं. 20 में वादांतर्गत संपत्तियों के संबंध में हक की घोषणा और कब्जे के प्रत्युद्धरण तथा अंत:कालीन लाभ के लिए एक वाद (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रथम वाद' कहा गया है) फाइल किया । यह दावा इस तथ्य पर आधारित था कि वादी/प्रत्यर्थियों ने वादांतर्गत संपत्तियां अपीलार्थियों (वाद में प्रतिवादियों) से रजिस्ट्रीकृत

विक्रय विलेख द्वारा क्रय की थीं । यह अभिवाक् किया गया कि यद्यपि अपीलार्थियों ने वादी/प्रत्यर्थियों को कब्जा दे दिया था, किंतु बाद में दुर्भावना पैदा हो जाने के उपरांत उन्होंने अधिभोग अधिकार की ईप्सा करते हुए भूमि अधिकरण में समावेदन किया और उन्हें अर्थात् वादी/प्रत्यर्थियों को वादांतर्गत संपत्ति से बेकब्जा करने की कार्यवाही की । भूमि अधिकरण ने आरंभ में अपीलार्थियों के पक्ष न्यादेश दिया, तथापि, उन निष्कर्षों को 1981 की रिट याचिका सं. 12662 में उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया । इस प्रश्न पर नए सिरे से विचार करने के लिए भूमि अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया गया । इस दौर में भूमि अधिकरण ने पक्षकारों को विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए सिविल न्यायालय में समावेदन करने का निदेश दिया । इसलिए वादी/प्रत्यर्थियों ने घोषणा और कब्जे के लिए प्रथम वाद फाइल किया । अपीलार्थियों ने प्रथम वाद में प्रतिरक्षा की और दावों से इनकार किया ।

3. अपीलार्थियों ने एक अन्य वाद (1985 का मूल वाद सं. 22, जिसे इसमें इसके पश्चात् "द्वितीय वाद" कहा गया है) फाइल किया । द्वितीय वाद में यह अभिकथन किया गया कि प्रत्यर्थी (द्वितीय वाद में प्रतिवादी) के पक्ष में किया गया विक्रय विलेख, प्रदर्श-1 एक नाममात्र का विक्रय विलेख था और प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए उधार के लिए एक प्रतिभूति के रूप में निष्पादित किया गया था । अपीलार्थियों ने एक दस्तावेज का अवलंब लिया जिसके बारे में उन्होंने यह दावा किया कि वह विक्रय करार था, जिसके अधीन प्रत्यर्थी अभिकथित रूप से अपीलार्थियों को वाद संपत्तियों को निष्पादित या प्रतिहस्तांतरित करने के लिए सहमत हुआ था । इस करार के निबंधनों के अनुसार, अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थी को तीन वर्ष के भीतर 9000/- रुपए का संदाय करना था । यह अभिकथन करते हुए कि प्रत्यर्थी ने 9000/- रुपए की पूरी रकम 15 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ प्राप्त करने के बावजूद विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया, अपीलार्थियों ने हक की घोषणा और स्थायी व्यादेश तथा अनुकल्पत: तारीख 28 मई, 1973 के विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए द्वितीय वाद फाइल किया । अपीलार्थियों ने यह भी आग्रह और दावा किया कि वे वादांतर्गत संपत्तियों पर काबिज हैं ।

4. विचारण न्यायालय ने हक, कब्जे और विनिर्दिष्ट पालन के लिए विवाद्यक विरचित किए और सामान्य साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए अग्रसर हुआ । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी विक्रय विलेख (एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज) के फलस्वरूप वादांतर्गत संपत्तियों का पूर्ण स्वामी हैं और यह भी निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी, जिन्होंने द्वितीय वाद फाइल किया था, वाद संपत्तियों पर अवैध रूप से काबिज हैं । द्वितीय वाद में के विवादों के संबंध में विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी उस करार के निष्पादन को सिद्ध करने में असफल रहे हैं जिसके लिए उन्होंने विनिर्दिष्ट पालन के लिए ईप्सा की थी । पक्षकारों द्वारा अवलंब लिए गए साक्ष्यों के आधार पर इस विवाद्यक का विनिश्चय किया गया । परिणामतः, प्रत्यर्थी के वाद अर्थात् घोषणा, हक और कब्जे के लिए प्रथम वाद को उसके पक्ष में डिक्री किया गया । तथापि, अपीलार्थियों के वाद को खारिज कर दिया गया ।

5. द्वितीय वाद की खारिजी तथा प्रथम वाद में प्रत्यर्थी के पक्ष में डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थियों द्वारा अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष अपीलें फाइल की गईं । दोनों अपीलों पर एक साथ विचार किया गया – जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा सामान्य निर्णय द्वारा किया गया था । प्रथम अपील न्यायालय ने अपीलार्थियों की दलीलों को विश्वसनीय माना और उनके अभिवाक् को मंजूर किया । परिणामतः, यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी के पक्ष में विक्रय विलेख एक नाममात्र का विक्रय विलेख था और यह कार्यवाही किए जाने के लिए नहीं था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थियों ने विक्रय करार को साबित किया था और विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री के हकदार थे ।

6. प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर दो द्वितीय अपीलों अर्थात् 2002 की द्वितीय अपील सं. 368 और 736 के साथ उच्च न्यायालय में समावेदन किया । प्रत्यर्थियों ने यह अभिवाक् किया कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा एक ओर उनके वाद की खारिजी तथा दूसरी ओर द्वितीय वाद में वर्तमान अपीलार्थियों के पक्ष में डिक्री करना विधि की दृष्टि से गलत था ।

कर्नाटक उच्च न्यायालय ने विचार के लिए निम्नलिखित विधि का प्रश्न विरचित किया :–

> "क्या निचले अपील न्यायालय ने प्रदर्श-3 के आधार पर प्रत्यर्थी के पक्ष में डिक्री मंजूर करके न्यायोचित किया था ।"

7. उच्च न्यायालय ने यह पाया कि अपीलार्थियों द्वारा अवलंब लिया गया मुख्य आधार विक्रय करार अर्थात् प्रदर्श डी-3 की असलियत और सत्यता की बाबत था । उच्च न्यायालय यह उल्लेख करने के पश्चात् कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष प्रत्यर्थी के पक्ष में थे, जो प्रथम अपील न्यायालय द्वारा उलट दिए गए थे, इस बात पर विचार करने के लिए अग्रसर हुआ कि क्या प्रदर्श डी-3 को अभिलेख पर की सामग्री को ध्यान में रखते हुए एक असली दस्तावेज समझा जा सकता है । उच्च न्यायालय ने यह पाया कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष कई कारकों पर आधारित थे । प्रथम कारक प्रदर्श डी-3 की लिखावट की रीति के संबंध में था, जो प्रदर्श डी-1 (स्वीकृत रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख) में की लिखावट की रीति से भिन्न थी । विनिर्दिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया कि प्रदर्श डी-3 में अवस्थित भूमि और जो वाद भाग हैं (अर्थात् सर्वेक्षण सं. 36-38) तथा उस भूमि के विस्तार की बाबत, जो उन सर्वेक्षण संख्यांकों में हैं, कोई विशिष्टियां और अन्य सुसंगत विशिष्टियां अंतर्विष्ट नहीं हैं । उच्च न्यायालय ने अभिकथित विक्रय करार (प्रदर्श डी-3) की स्वीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श पी-1) और अन्य दस्तावेजों के साथ तुलना करने पर यह पाया कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों की इस दलील को स्वीकार नहीं किया था कि प्रदर्श डी-3 उसी दिन निष्पादित किया गया था जिस दिन प्रदर्श पी-1 निष्पादित किया गया था । दूसरा कारण जो उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा प्रदर्श डी-3 को नामंजूर करने के लिए पाया, यह था कि दस्तावेज में विक्रय प्रतिफल की रकम पर ब्याज का संदाय करने के संबंध में कोई शर्त अंतर्विष्ट नहीं थी, जो कि अभिकथित रूप से एक उधार था । दूसरी ओर, अपीलार्थियों का साक्ष्य यह था कि 15 प्रतिशत ब्याज का संदाय किए जाने की सहमति हुई थी और उन्होंने प्रत्यर्थी को विक्रय रकम या

उधार की रकम के साथ ब्याज के रूप में 2,700/- रुपए का संदाय किया था । एक ओर अभिवचन और दस्तावेजों के बीच विरोधाभास तथा दूसरी ओर मौखिक साक्ष्य को वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध गठित होने वाला एक कारक अभिनिर्धारित किया गया । तृतीयतः, यह पाया गया कि अपीलार्थियों ने यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था कि ब्याज वास्तव में संदत्त किया गया था या वस्तुतः 9,000/- रुपए की मूल रकम का वापस संदाय किया गया था । इस संबंध में, प्राप्ति को अभिलिखित करने और इसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने में लोप को उनके पक्षकथन के लिए घातक अभिनिर्धारित किया गया । विचारण न्यायालय द्वारा अंत में यह अभिनिर्धारित किया गया कि द्वितीय वाद में विनिर्दिष्ट पालन के लिए दावा भी वर्जित था चूंकि अपीलार्थियों की यह विनिर्दिष्ट दलील थी कि 9,000/- रुपए के प्रतिसंदाय के लिए समय तीन वर्ष था जो बहुत पहले व्यतीत हो चुका था । उच्च न्यायालय द्वारा अन्य निष्कर्षों पर भी विचार किया गया था ।

8. उच्च न्यायालय ने इन तथ्यों पर ध्यान देने के पश्चात् और प्रदर्श डी-3 पर भी विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय का निर्णय और डिक्री, उसके समक्ष निष्कर्षों पर पूर्ण रूप से किए गए विचार पर आधारित होने के कारण, उचित और न्यायोचित है । उच्च न्यायालय की यह राय थी कि विचारण के दौरान न्यायालय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन किसी दस्तावेज की परीक्षा कर सकता है । चूंकि प्रत्यर्थी ने प्रदर्श डी-3 पर अपने हस्ताक्षर होने की बात स्वीकार नहीं की थी, इसलिए न्यायालय ने स्वीकृत दस्तावेज अर्थात् प्रदर्श पी-1 की परीक्षा करने के लिए अपनी शक्तियों के भीतर कार्य किया था और इस दस्तावेज पर हस्ताक्षरों की तुलना विवादित दस्तावेज, प्रदर्श डी-3 पर हस्ताक्षरों से की थी । एक अन्य महत्वपूर्ण परिस्थिति, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, यह थी कि अपीलार्थियों ने प्रदर्श पी-1 निष्पादित करने के बावजूद स्वयं के स्वामी होने का दावा नहीं किया था क्योंकि भूमि अधिकरण के समक्ष अपने आवेदन (प्रदर्श पी-1 निष्पादन करने के पश्चात् फाइल किए गए) में उन्होंने यह स्वीकार किया था कि प्रत्यर्थी वादांतर्गत भूमि का स्वामी था ।

वास्तव में अपीलार्थियों का अभिवाक् यह था कि वे प्रत्यर्थी के किराएदार थे । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थियों के लिए अधिकरण के समक्ष ऐसी दलील देने का कोई कारण नहीं था यदि प्रदर्श पी-1 केवल एक नाममात्र का दस्तावेज रहा होता । उच्च न्यायालय ने यह पाया कि विचारण न्यायालय ने अन्य साक्ष्य, जैसे राजस्व अभिलेख प्रदर्श पी-4 और प्रदर्श पी-5 पर भी विचार किया था जिनमें प्रत्यर्थियों को खातेदार दिखाया गया था । उच्च न्यायालय ने यह कारण दिया कि यदि प्रदर्श पी-1 केवल एक नाममात्र का विक्रय विलेख रहा होता, तो अपीलार्थियों ने राजस्व प्राधिकारियों को अभिलेख में प्रत्यर्थी का नाम प्रतिस्थापित किए जाने की मंजूरी देकर भूमि के स्वामी के नाम में परिवर्तन करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया होता ।

पक्षकारों की दलीलें

9. अपीलार्थियों की ओर से यह आग्रह किया गया कि उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय की डिक्री में हस्तक्षेप करके गलती की थी । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 को इंगित करते हुए यह आग्रह किया गया कि किसी द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता केवल विधि के सारवान् प्रश्नों की परीक्षा करने तक सीमित है और इस मामले में न्यायालय साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए अग्रसर हुआ था तथा प्रथम अपील न्यायालय, जो तथ्यों के संबंध में अंतिम न्यायालय है, के निष्कर्षों से असमति व्यक्त की थी । इसके अतिरिक्त, दस्तावेजों, विशिष्ट रूप से प्रदर्श डी-3 की परीक्षा पूरी रूप से एक तथ्यात्मक पहलू था जिसे, तनिक संदेह के बिना, एक विधिक विवाद्यक नहीं समझा जा सकता है, विधि का सारवान् प्रश्न होने की बात तो दूर ।

10. प्रत्यर्थी की ओर से काउंसेल ने इस न्यायालय से यह आग्रह किया कि आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप न किया जाए और यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों की पुष्टि की थी जो विधि और अभिलेख पर साक्ष्य के अनुरूप हैं । यह दलील दी गई कि विचारण न्यायालय ने प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए प्रदर्श डी-3 के बारे में कई महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख किया था,

जैसे कि भूमियों का या इसी प्रकार की विशिष्टियों का कोई ब्यौरा न होना या संदेय ब्याज के बारे में कोई उल्लेख न होना और इन सभी से यह संदेहास्पद हो जाता है । इसके अतिरिक्त, तथाकथित विक्रय करार (प्रदर्श डी-3) का अभिलेख पर अन्य साक्ष्य द्वारा खंडन किया गया था ।

विश्लेषण और निष्कर्ष

11. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी ने प्रथम वाद में रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख, प्रदर्श पी-1 के आधार पर कब्जे का दावा किया था । इस दस्तावेज से इनकार नहीं किया गया है । अपीलार्थियों द्वारा प्रतिरक्षा में स्थापित किया गया परस्पर-विरोधी पक्षकथन तथा द्वितीय वाद में किया गया दावा यह था कि प्रदर्श पी-1 नाममात्र था और वास्तव में प्रतिभूति के रूप में था ; अपीलार्थियों ने यह भी दलील दी कि वादांतर्गत भूमि 9,000/- रुपए की पूरी रकम प्राप्त करने के पश्चात् प्रतिहस्तांतरित की जानी थी, जो वास्तव में प्रत्यर्थी को सौंपी गई थी । यह अभिलेख का विषय है कि अपीलार्थियों ने कर्नाटक भूमि सुधार अधिनियम के अधीन अधिभोग अधिकारों के लिए आवेदन किया था और उन्हें प्रदान किया गया था । भूमि अधिकरण के आदेश पर प्रत्यर्थी को बेकब्जा किया गया था । अधिकरण के आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया था और उसने आवेदन को नए सिरे से विचार करने के लिए प्रतिप्रेषित किया था । दूसरे दौर में, अधिकरण ने पक्षकारों को वापस सिविल न्यायालय भेज दिया था । इन परिस्थितियों में दो वाद फाइल किए गए थे ।

12. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों की प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया और विक्रय करार (प्रदर्श डी-3) पर अविश्वास करते हुए वाद को डिक्री किया गया । उसके निष्कर्ष कई कारणों पर आधारित थे । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, प्रदर्श डी-3 में न तो वादांतर्गत भूमियों का ब्यौरा दिया गया है और न ही इसमें किसी ब्याज के संदाय का उल्लेख किया गया है, अपीलार्थियों द्वारा भी ऐसी स्थिति दी गई थी । इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने अधिभोग अधिकारों के लिए आवेदन के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य की भी परीक्षा की थी जिसमें स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी को स्वामी के रूप में प्रकट किया गया है और यह दावा

किया गया है कि अपीलार्थी उनके अधीन किराएदार थे । अंततः, यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रदर्श डी-3 की लिखावट, जो अभिकथित रूप से उसी दिन निष्पादित किया गया था जिस दिन प्रदर्श पी-1 (स्वीकृत विक्रय विलेख) निष्पादित किया गया था, एक जैसी नहीं थी । प्रत्यर्थी ने प्रदर्श डी-3 से इनकार किया था । प्रथम अपील न्यायालय ने प्रदर्श डी-3 पर विश्वास न करने के लिए विचारण न्यायालय को गलत ठहराया और यह अभिनिर्धारित करने के लिए अग्रसर हुआ कि यह असली था । उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विधि का सारवान् प्रश्न प्रथम अपील न्यायालय द्वारा प्रदर्श डी-3 के किए गए निर्वचन के संबंध में था ।

13. आक्षेपित निर्णय में उन कारणों का वर्णन किया गया है जिनसे विचारण न्यायालय प्रदर्श डी-3 को नामंजूर करने के लिए प्रेरित हुआ था और उनका अनुमोदन किया । साथ ही साथ, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय को उन महत्वपूर्ण कारणों की उपेक्षा करने के लिए गलत पाया था, जो मामले के तथ्यों की तह में थे और अभिलेख पर आधारित थे जिनके परिणामस्वरूप प्रदर्श डी-3 और कब्जे की डिक्री को नामंजूर कर दिया गया था । अपीलार्थियों की मुख्य दलील यह है कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय उन विषयों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था जिन्हें विशुद्ध तथ्य के निष्कर्ष कहा गया है । यह दलील दी गई कि प्रदर्श डी-3 की परीक्षा करना विधि के सारवान् प्रश्न के रूप में नहीं कहा जा सकता है अपितु यह पूरी तरह से तथ्यों का मूल्यांकन करने की कोटि में आता है ।

14. निस्संदेह, उच्च न्यायालय को धारा 100 के अधीन जो अधिकारिता प्राप्त है, वह उसके द्वारा विधि के सारवान् प्रश्न की विरचना पर आधारित है । विधि की दृष्टि से, यह स्वतः सिद्ध है कि प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष अंतिम होते हैं । तथापि, यह नियम कि विधि के सारवान् प्रश्न के बिना उच्च न्यायालय निचले न्यायालय के निष्कर्षों या तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, यह दो महत्वपूर्ण सावधानियों के अध्यधीन है । पहली यह है कि यदि तथ्य के निष्कर्ष सुस्पष्टतया अनुचित हैं या न्यायालय की अंतःचेतना

को आघात पहुंचता है ; दूसरे शब्दों में, यह तर्कपूर्ण दिखाई देता है कि अभिलेख पर के तथ्यों पर विचार करते हुए हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा । दूसरी यह है कि जहां तथ्य के निष्कर्षों की परीक्षा किया जाना अपेक्षित है और उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 में उल्लिखित सीमित परिस्थितियों में उलटा जा सकता है ।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 निम्न प्रकार से है :–

> "103. **तथ्य-विवाद्यकों का अवधारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति** – यदि अभिलेख में का साक्ष्य पर्याप्त हो तो किसी भी द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ऐसी अपील के निपटारे के लिए आवश्यक कोई विवाद्यक अवधारित कर सकेगा, जो –
>
> (क) निचले अपील न्यायालय द्वारा या प्रथम बार के न्यायालय और निचले अपील न्यायालय दोनों द्वारा अवधारित नहीं किया गया है, अथवा
>
> (ख) धारा 100 में यथानिर्दिष्ट विधि के ऐसे प्रश्न के विनिश्चय के कारण ऐसे न्यायालय या न्यायालयों द्वारा गलत तौर पर अवधारित किया गया है ।"

16. **नगरपालिका समिति, होशियारपुर** बनाम **पंजाब राज्य बिजली बोर्ड**[1] वाले मामले में के निर्णय में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "26. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 का अपवाद नहीं है और न ही यह इसका स्थान लेने के लिए है, बल्कि यह उसी प्रयोजन को पूरा करने के लिए है । यहां तक कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 को लागू करते समय उच्च न्यायालय को यह निष्कर्ष अभिलिखित करना चाहिए कि उसे ऐसी शक्ति का इसलिए प्रयोग करना है क्योंकि उसने यह पाया है कि निचले न्यायालय

---

[1] (2010) 13 एस. सी. सी. 214.

(न्यायालयों) द्वारा अभिलिखित किए गए तथ्य के निष्कर्ष अनुचितता के कारण दूषित हो गए हैं । इतना ही नहीं, ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल आपवादिक परिस्थितियों में और सावधानीपूर्वक वहां किया जा सकता है जहां मामले में अंतर्वलित मुख्य प्रश्न को निचले न्यायालय (न्यायालयों) द्वारा विनिश्चित नहीं किया गया था ।

27. यहां तक कि किसी तथ्य के प्रश्न पर भी द्वितीय अपील ग्रहण करने पर कोई प्रतिषेध नहीं है बशर्ते न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए तथ्य के निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्य पर विचार न करने के कारण या मामले में गलत दृष्टिकोण अपनाने से दूषित हो गए हैं अर्थात् तथ्य के निष्कर्ष अनुचित पाए जाते हैं । किंतु उच्च न्यायालय समवर्ती तथ्यों के निष्कर्षों में एक नैमित्तिक और आकस्मिक रीति में निचले न्यायालयों के निष्कर्षों पर अपना आत्मनिष्ठ समाधान प्रतिस्थापित करके हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । [जगदीश सिंह **बनाम** नत्थू सिंह, (1992) 1 एस. सी. सी. 647, कर्नाटक वक्फ़ बोर्ड **बनाम** अंजुमन-ई-ईस्माइल मदरिस-उन-निस्वान, (1999) 6 एस. सी. सी. 343 और दिनेश कुमार **बनाम** यूसुफ़ अली, (2010) 12 एस. सी. सी. 740 वाले मामले देखें] ।

28. यदि कोई तथ्य का निष्कर्ष सुसंगत सामग्री की उपेक्षा करके या अपवर्जित करके या असंगत सामग्री पर विचार करके निकाला गया है या यदि निष्कर्ष पर पहुंचने में तर्क की अनदेखी इतने अन्यायपूर्ण रूप से की गई है जिससे कि वह निष्कर्ष तर्कहीनता के दोष से ग्रसित होने के कारण उस पर अनुचित होने का दोष लग जाता है, तब ऐसे निष्कर्ष को विधि की दृष्टि से त्रुटियुक्त ठहराया जाता है । यदि न्यायालय के निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं या ऐसे साक्ष्य पर आधारित हैं जो पूरी तरह से अविश्वसनीय है या साक्ष्य ऐसा है जो प्रक्रियात्मक अनियमितता से ग्रसित है या निष्कर्ष ऐसे हैं कि कोई युक्तियुक्त व्यक्ति उन निष्कर्षों पर नहीं पहुंचता, तब निष्कर्षों को अनुचित

होना कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त यदि निष्कर्ष या तो न्यायालय के अस्पष्ट मत पर या अटकलबाजी पर आधारित है, तो ऐसा निर्णय मस्तिष्क का प्रयोग न करने के कारण अतिरिक्त खामी से ग्रस्त है और इस प्रकार दूषित हो जाता है [(भरथ मथा **बनाम** आर. विजय रंगनाथन, (2010) 11 एस. सी. सी. 483 वाला मामला देखें] ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

17. **नारायण सीतारामजी बाडवाइक (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** बनाम **बिसाराम और अन्य**[1] वाले इस न्यायालय के हाल ही के निर्णय में इस न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 के अधीन तथ्यात्मक विवाद्यकों का मूल्यांकन करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता के संदर्भ में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"11. इस धारा के परिशीलन मात्र से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि इसमें दो परिस्थितियों में उच्च न्यायालय के लिए तथ्य से संबंधित विवाद्यक का विनिश्चय करने के लिए उपबंध किया गया है, बशर्ते इससे पूर्व कि अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य हो । पहली, जब अपील के निपटारे के लिए आवश्यक विवाद्यक को निचले अपील न्यायालय या दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अवधारित नहीं किया गया है । और दूसरी, जब तथ्य के विवाद्यक को निचले न्यायालय (न्यायालयों) द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन विधि के प्रश्न के विनिश्चय के फलस्वरूप गलत रूप से अवधारित किया गया है ।"

18. प्रस्तुत मामले में, इस न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने ठोस और विश्वसनीय कारण अभिलिखित किए हैं कि क्यों प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक है । ये कारण पूर्ण रूप से पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर आधारित थे । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन जैसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य

---

[1] (2021) एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 319.

का मूल्यांकन तात्विक तथ्यों की अनदेखी करके किया गया था और प्रदर्श डी-3 के निष्पादन की बात से इनकार किया गया था । इन परिस्थितियों में, यह सिद्ध करने का भार अपीलार्थियों पर था कि रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख एक नाममात्र का दस्तावेज था । विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में पांच तर्कपूर्ण कारण दिए गए हैं कि क्यों अपीलार्थियों के अभिवाकों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से अवेक्षा की गई है । विशिष्टियां न होने के अलावा 9,000/- रुपए के प्रतिसंदाय की बाबत अभिसाक्ष्य भी उपबंधों के प्रतिकूल था क्योंकि 15 प्रतिशत की दर से ब्याज के संदाय की बाबत कोई प्रकथन नहीं था । इसके अतिरिक्त, विक्रय विलेख के पश्चात् अधिभोग अधिकारों के लिए किया गया अपीलार्थियों का आवेदन और जो अभिकथित विक्रय करार निष्पादित किया गया था, उसमें यह दावा किया गया था कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के अधीन किराएदार थे । परिणामत:, भूमि अधिकरण के आदेश को अपास्त कर दिया गया था ; मामला प्रतिप्रेषित करने पर भूमि अधिकरण की यह राय थी कि उसे इस विवाद्यक का विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं है और ऐसा करना विचारण न्यायालय पर छोड़ दिया गया था । यह प्रतीत होता है कि इन महत्वपूर्ण पहलुओं का मूल्यांकन नहीं किया गया था और उनके महत्व को अनदेखा कर दिया गया था । परिणामत:, प्रथम अपील न्यायालय ने महत्वपूर्ण साक्ष्य की अनदेखी करके और अभिलेख का इसके उचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन न करके तथा विचारण न्यायालय की डिक्री उलट कर गलती की थी । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए दस्तावेजों की परीक्षा की थी और निष्कर्षों को इस प्रकार ठीक किया था मानो ये निष्कर्ष धारा 103 के अधीन थे । यदि अपीलार्थियों के तर्क अभिभावी किए जाते हैं, तो तथ्यों के पूर्णत: गलत मूल्यांकन पर आधारित और तात्विक साक्ष्य की अनदेखी करके निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्ष आवश्यक रूप से बने रहेंगे और पक्षकारों पर आबद्ध होंगे जिससे अन्याय होगा । स्पष्ट रूप से इन्हीं कारणों से उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 103 के अधीन तथ्यात्मक पुनर्विलोकन शक्ति का सीमित प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं । तथापि, ऐसी शक्ति

का प्रयोग किया जा सकता है, इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है । आक्षेपित निर्णय में अभिव्यक्त रूप से इस उपबंध को निर्दिष्ट नहीं किया गया है । मामले की इन परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने इस उपबंध को ध्यान में रखते हुए शक्ति का प्रयोग किया था । इसके अतिरिक्त, हमारी यह भी राय है कि संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित निर्णय में विशेष इजाजत अधिकारिता (जो इस न्यायालय को अंतिम सुनवाई के प्रक्रम पर भी उपलब्ध है) का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

19. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि इन अपीलों में कोई गुणागुण नहीं है और इन्हें तद्नुसार खारिज किया जाता है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.